REVIEW OF RESEARCH

भारतीय सिनेमा ,साहित्य और संगीत

गतिकृष्ण नायक

पीएच.डी. शोधार्थी , संगीत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 8 | MAY - 2019

प्रस्तावना :

समाज के विकास के लिये साहित्य एक आवश्यक कारक है। किसी भी देश के साहित्य से वहाँ के जन–जीवन, आकार–प्रकार और भूतकाल में घटी घटनाओं को जाना व परखा जा सकता है, इसलिये साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। इसी प्रकार जितनी आवश्यकता साहित्य की है, उतनी हि सिनेमा की भी है। सिनमा भी समाज के विभिन्न पक्षो की जानकारी हमें देता है। सिनेमा ही है, जो हमारे समाज में चल रहे घटना क्रम के तत्कालिक परिणाम को हमारे सामने लाता है। साहित्य व सिनेमा एक–दूसरे के पूरक माने जा सकते हैं।

भारत में सिनेमा और साहित्य के संबंधो पर संभवतः बहुत कम विचार किया गया है। हालाँकि साहित्य को धर्म, राजनीति, इतिहास आदि के परिप्रेक्ष में रखकर देखा जा सकता है। अन्य सामाजिक विषयों की तुलना साहित्य से की गयी है और उसके विभिन्न पहलू विद्वानों के माध्यम से हमारे सामने आये हैं। लेकिन ऐसा कम ही हुआ है कि सिनेमा और साहित्य को आमने–सामने रखकर उनके आंतरिक संबंधो को दर्शाया गया है। पश्चिमी देशो में सिनेमा और साहित्य के संबंधो पर गम्भीरता से विचार हुआ है, और उसके फलस्वरूप विश्व के सामने सिनेमाई रूप लिये ऐसी कृत्तिया सामने आयी है जिनमें शुद्ध साहित्यिकता व सिनेमा की आत्मा के दर्शन होते हैं। किसी ने साहित्य को सीधे समाज से जोड़ा है, तो किसी ने कल्पना के लोक तक ले पहुँचाया है। भारत के विद्वानों ने भी साहित्य या काव्य पर अपने ढंग से अवलोकन किया है। "भामह" का मानना है 'शब्द और अर्थ' मिलकर काव्य होता है। "दण्डी" कहते हैं 'ईष्ट अर्थ से विभूषित पदसमूह ही काव्य शरीर है। अतः साहित्य एक रासायनिक मिश्रण है, इसके निर्माण के तंतुओं को पृथक कर देखना असंभव है। साहित्य के केन्द्र में व्यक्ति प्रतिष्ठित रहता है। साहित्य के माध्यम से व्यक्ति अपने को अनेक परिस्थितियों में रखकर देखना, पहचानना चाहता है। कालिदास और शेक्सपीयर जैसे विशुद्ध रसवादी साहित्यकारों पर अपने युग के सामयिक जीवन की छाप पूरी तरह लक्षित होती है। भारतीय साहित्यकारों में तो यह प्रवृत्ति बहुत स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुई है। प्रेमचंद की साहित्यिक रचनाएँ तो तत्कालीन परिस्थितियों का लेखा–जोखा ही हमारे सामने प्रस्तुत करती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'साहित्य जीवन की आत्म कहानी है।'

अब प्रश्न उठ सकता है क्या साहित्यिक जीवन की इस आत्म कहानी के दृश्य माध्यम से करोड़ो लोगों तक पहुँचाया जा सकता है? अतः ये ऐसे बिन्दु हैं, जो साहित्य और सिनेमा में गहरा संबंध स्थापित करते है और जहाँ आकर एक साहित्यिक कृत्ति, विस्तृत आयाम ग्रहण करती है। साहित्य में जहाँ साहित्यकार विभिन्न पक्षो को बांधने का प्रयास करता है वहीं सिनेमा निर्देशक उस साहित्यिक कृत्ति को मूल रूप में रखते हुए ऐसा नया रूप देता है जिससे वह और प्राणवान हो उठता है, और ऐसा भी हुआ है कि कई उपन्यासकारों की कृत्तियाँ साहित्यिक रूप में उतने लोगों तक नहीं पहुँच पायी जितने की सिनेमा माध्यम से। सिनेमा ने उस कृत्ति को नवीन आयाम दिया।

सिनेमा के निर्देशक, कृत्ति के एक समय विशेष में रचनाकार के उन सृजनात्मक क्षणों को तो नहीं जी सकता लेकिन सतत् अध्ययन और शोघ के उपरान्त प्रायः वह उन भावनाओं व संवेदनाओं को उभार पाने में सफल हो उठता है जिसकी कल्पना कई बार मूल साहित्यकार से भी नहीं की जा सकती। आज सिनेमा और साहित्य की संबंधात्मक अवधारणा विभिन्न स्तर पर अलग हो पायी है, लेकिन स्थूल रूप में एक अच्छे निर्देशक की साहित्यिक कृत्ति पर आधारित फिल्म ने जन मानस को सिनेमा के असली ताकत से परिचित कराया है।

भारत में उपन्यासकार 'भीष्म साहनी' द्वारा लिखे गये उपन्यास 'तमस' का उदाहरण इस संदर्भ में प्रासंगिक होगा। यह उपन्यास भारत–पाक विभाजन के समय हिन्दु–मुसलमान के दिमाग में उभरा, प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक गोविन्द निहलाणी ने इस फिल्म को बनाया। जिसे दुरदर्शन समेत अन्तर्राष्ट्रिय स्तर पर दिखाया गया। इस फिल्म को लेकर बहुत विवाद भी उठे, सारे देश में 'तमस' को लेकर बहस छिड़ गयी। अतः 'तमस' भाषा और सीमा लाघँकर भारत के कोने–कोन में लोगों के पास पहुँच गया। वस्तुतः यह फिल्म के जरिये साहित्य और सिनेमा को लेकर एक नयेपन की शुरूवात हुई।

प्रसिद्ध शास्त्रीय साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद के विख्यात उपन्यास 'गोदान' पर इसी नाम से 1963 में फिल्म बनी। सहजता और स्वाभिकता इस फिल्म के महत्वपूर्ण तत्व थे। उनके अन्य उपन्यासों 'रंगभूमि', 'गबन' आदि का भी आगे चलकर फिल्मांकन हुआ। प्रेम चंद की प्रसिद्ध कथा 'दो बैलों की कथा' पर हीरा मोती नामक फिल्म बनी। सिनेमाई माध्यम से यह कहानी बहुत अच्छे रूप में भारतीय दर्शकों के सामने आयी। एक अन्य कहानी 'शतरंज' के खिलाड़ी' पर इसी नाम से सत्यजीत राय ने फिल्म बनायी जो ऐतिहाससिक परिप्रेक्ष्य में अनुपम फिल्म थी। संभवतः पहली बार किसी विख्यात भारतीय निर्देशक ने किसी विख्यात साहित्यकार की रचना पर फिल्म का निर्माण किया। इस फिल्म के माध्यम से भारत में सिनेमा और साहित्य की अंतरंगता में प्रौढ़ता आयी यह एक मात्र भारतीय हिन्दी फिल्म थी जिसका विश्वव्यापी प्रदर्शन हुआ। फणीश्वर नाथ रेणु की कहानी 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' पर बनी फिल्म 'तीसरी कसम' ने भारतीय लोक जीवन की अंतरंग हलचलों को अभिव्यक्ति दी। इसी से ये संभावनाएं तलाशी गयीं कि एक निर्देशक चाहे तो अपनी सूझबूझ से साहित्य और सिनेमा में सामंजस्य स्थापित कर सकता है। साहित्यिक विधा पर बनी यह फिल्म भारतीय जनमानस में खूब प्रसिद्ध व चर्चित हुई।

बांग्ला भाषा में तो साहित्यिक सिनेमा को नये आयाम मिले। विश्व प्रसिद्ध सिनेमाकार सत्यजीत राय की विश्व प्रसिद्ध फिल्म 'पाथेर पांचाली' उपन्यास पर ही बनी थी। भारतीय सिनेमा के विकास में यह फिल्म मिल का पत्थर साबित हुई। शरतचन्द्र के उपन्यास देवदास, बड़ी दीदी, काशीनाथ, परिणीता आदि हिन्दी भाषा में अनुदित हुए और इन्हीं नामों से इनका फिल्मांकन हुआ।

आजकल तो सिनेमा में ऐसे लेखकों की भीड़ देखी जा सकती है जिसके लेखन का कोई उद्देश्य नही होता, सिर्फ कामुकता का विज्ञापन है। कल्पित जासुसी का प्रचार है और सबसे बढकर पैसा बनाने की एक कलाकारिता है। स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी यह कूड़ा छप रहा है और बिक भी रहा है। जबकि इस पर तुरंत सरकारी प्रतिबंध लगा देना चाहिये। और साहित्य को लेकर गंभीर सिनेमा का प्रचार होना चाहिये जो हमारे समाज के हित में हो। जन मानस को जिससे कुछ ज्ञान प्राप्त हो सके। वर्तमान समय के सिनेमाकारों को पुराने सिनेमाकारों के नक्शे कदम पर आगे बढ़ना चाहिये।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी सिनेमा का इतिहास, संजीव श्रीवास्तव, प्रथम संस्करण–2006, भारत सरकार, सुचना भवन, नई दिल्ली–110003
2. सिनेमा और साहित्य, हरीश कुमार, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2010
3. हिन्दी चित्रपट एवं संगीत का इतिहास, डॉ. विमला, संजय प्रकाशन, दिल्ली,
4. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई
5. फिल्म एंड लिटरेचन–त्रैमासिक, सलिसवरी स्टेट कॉलेज, यू.एस.ए.
6. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.